फुगाटी का जूता

हिन्दी ADDA

मनीष वैद्य

फुगाटी का जूता

अब जूता उनके दिमाग में था या कहें कि जूता दिमाग में इस कदर अपना दखल कायम कर चुका था कि वे उससे इतर सोच भी नहीं पा रहे थे। जूता कुछ इस तरह से

उनके भीतर रच-बस गया था कि कई बार झटकने पर भी निकल नहीं पा रहा था। गोया जूता नहीं उन्होंने कोई बीमारी गले लगा ली थी।

मौसम बदल रहा था। गुनगुनी ठंड अब बिदा लेने को आतुर थी। सुबह-शाम फागुनी बयार तन-मन को सुहाने लगी थी। उन्होंने अपने ड्राइंग रूम में सोफे पर पसरते हुए दूर तक निगाहें दौड़ाई। सुबह की मुलायम धूप पूरब के पेड़ों से छनकर उजाले का इंद्रधनुष बनाते लॉन की घास पर कुछ तिरछी आकृतियाँ बना रही थी। आम के पेड़ों पर फूल लद गए थे। कोयल अपनी कूक में तान भरने लगी थी। पास के तालाब से कुछ प्रवासी परिंदे उनके लॉन के पेड़-पौधों पर मँडराते चले आए थे। क्यारियाँ फूलों से भर गई थी।

कोई और दिन होता तो शायद वे इस दृश्य को जी रहे होते, लेकिन आज... आज तो वह जूता उनके समूचे चेतनाबोध पर भारी पड़ रहा था। उस अकेले जूते ने उनकी समूची चेतना को झनझना दिया था। उन्हें लगा कि यह सब सोचने का अब कोई मतलब नहीं है। इससे कुछ नहीं होने वाला है। उन्हें अब मान ही लेना चाहिए कि वे समय को पीछे नहीं ले जा सकते और न ही भागते हुए समय को पकड़ने की कूबत अब उनमें बची है।

हालाँकि उन्होंने कभी तीव्रगामी पहियों पर सवार वक्त की रफ्तार को इतनी हड़बड़ी में बदहवास भागते भी नहीं देखा। उनके दौर में भी वक्त कभी ठहरा नहीं पर इस तरह उद्दंड, उद्दाम वेग से समूची सभ्यता और उसकी चेतना को रौंदते, धराशायी करते हुए वक्त से उनका साबका पहली ही बार है। वह भी उस जूते की वजह से। वह जूता नहीं होता तो शायद वे उसको इस तरह नहीं ही देख पाते। बदलते दौर की आहट से तो वे बावस्ता थे लेकिन वक्त के इतना दूर चले जाने की कल्पना भी उन्हें नहीं थी।

कभी उन्हें लगता कि जूता उनके गाल पर जड़ दिया गया है। वे दर्द और अपमानबोध से तिलमिला उठते हैं। कभी लगता कि जूते का आकार अनायास बड़ा हो रहा है। वह बढ़ते-बढ़ते इतना बड़ा हो जाता है कि बाजार से घर तक फैल जाया करता है। वह बाजार से घर तक की समूची जगह को घेर लेता है। वे डरने लगते हैं। जूते से नहीं, बाजार और घर के बीच की जगह कम होते जाने से। उन्हें डर है कि कहीं यह जूता बड़ा - और बड़ा होते हुए उनके घर में तो नहीं पसर जाएगा।

वह जूता अब वहाँ नहीं था। वह लौट गया था लेकिन उनकी स्मृतियों में वह जूता अब भी वहीं रखा हुआ था। उस खाली जगह पर अब भी उनकी स्मृतियों का जूता पड़ा हुआ था। चमचमाता हुआ काले रंग के चमड़े का जूता। उस पर करीने से काले रंग के महीन फीते गुँथे हुए थे। पैर की उँगलियों की और जाते हुए जूता नुकीला हो गया था। आम जूतों की तरह होते हुए भी उसमें कोई बात थी। खास बात। मन मोह लेने वाली अदा थी उस जूते की। उसके अनाम कारीगर का हुनर क्या रहा होगा। यह उसका हुनर ही रहा होगा, जिसने उस जूते में अपनी जान डाल दी थी।

अकूत दौलतमंद और ताकतवर एक बादशाह था। उसने दुनिया के सबसे हुनरमंद कारीगरों से कहा कि ऐसी मोहक और खूबसूरत तामीर की जाए कि दुनिया में किसी ने कभी सोची तक न हो। ख्वाबों से भी हसीन। हजारों मजदूरों ने अपने खून-पसीने से कुछ ही सालों में ऐसी बेमिसाल तामीर का महल बनाया कि चाँदनी रात में वह मोतियों की तरह झरता। नदी के पानी में अपना अक्स देख-देख महल इतराता। दुनिया ने ऐसा महल पहले कभी नहीं देखा था। इतना सुंदर तो बादशाह का ख्वाब भी नहीं था। दूसरे दिन कारीगरों को दरबार में बुलाया गया। कारीगर खुश थे कि उन्हें बड़ा इनाम मिलेगा। तख्त पर बैठे बादशाह ने वजीर को आदेश दिया कि इन कारीगरों के हाथ काट दिए जाएँ ताकि ये और कहीं ऐसी तामीर नहीं कर सकें। कुछ ही देर में उनके हाथ काटे जा चुके थे। तब से लेकर अब तक फिर कहीं कोई ऐसी तामीर नहीं हुई हाँ, बादशाहियत बनी रही। बादशाह बनते, बिगड़ते और बदलते रहे।

बचपन में सुना यह किस्सा उनकी स्मृतियों में हमेशा बना रहा। वे जब कोई नायाब चीज देखते तो उसके कारीगर के बारे में सोचते हुए डरने लगते। क्या पता उसके हाथ सलामत होंगे या नहीं। पहले पहल उन जूतों को देखकर भी उन्हें यही लगा था।

उन्हें अपने गाँव का कालू मोची अभी भी याद है। अपने छोटे से घर के आँगन में पत्थर पर जूते गाँठते हुए चमड़े को राँपी से काटता या हथौड़ी से ठोंकता तो लगता वह चमड़े को नहीं अपने समय को ठोंक-पीट रहा हो। वह जब अपनी पिरैनी से चमड़े को गाँठ रहा होता था तो लगता कि वह अपने अभावों को गाँठ रहा हो। रैदास के गीत गुनगुनाते हुए भी उसके हाथों की सधी हुई उँगलियाँ चमड़े को ठीक ऐसी मोड़ती कि चमड़ा खूबसूरत मोजडी में बदल जाया करता। उस पर चमड़े का फीता लगाता और

सतरंगी फुंदा बाँधता। फिर मोजडी का जोड़ा आँखों के सामने कर लेता। उसकी आँखें हँसने लगती। अपने ही हुनर पर शायद वह फिदा हो जाता। वह कभी खाली नहीं होता था, कभी जानवरों की खाल साफ करते हुए तो कभी मोजडी बनाते तो कभी फटे हुए जूतों में पैबंद लगाते हुए वह हर समय काम में लगा रहता।

उसके आस-पास नौसादर के पानी में सड़ते हुए चमड़े की बदबू फैली रहती। उन्हें लगता कि कालू अपने छोटे-छोटे औजारों से किसी बड़ी लड़ाई की तैयारी कर रहा है। वे उसे जीतता हुआ देखना चाहते थे लेकिन बादशाह और कारीगर के किस्से से भीतर ही भीतर डर जाया करते। कालू के हाथ तो नहीं काटे गए लेकिन अब उसके सीधे हाथ में कोई हरारत नहीं। उसकी देह के दाएँ अंग को फाजिल हो गया है। अब वहाँ गीले चमड़े की गंध कहीं नहीं है। उसकी उँगलियाँ किसी छोटी-सी हरकत के लिए अब भी कसकती होंगी, थरथराती होंगी। वह अब आँगन में नहीं बगल की बरसाती में सारी रात खाँसते और थूँकते हुए पड़ा रहता है। आँगन की छाती पर एक छोटी दुकान उग आई है। डायमंड फुटवेयर। उसके लड़के शहर से नई चलन के जूते-चप्पल लाकर बेचते हैं। लड़के कहते हैं कि इसमें मेहनत भी कम और मुनाफा ज्यादा। कालू बात काटता है, 'मुनाफा है पर हुनर...' लड़के उसे खा जाने वाली निगाह से घूरते हैं। वह सहम जाता है।

वे भी तो सहम गए थे। ठीक उसी तरह, जब मन्नू से उन्होंने जूते पर बात की थी। वे खुद को कालू में बदलते देख रहे थे... तो क्या हम सबकी नियति यही है। एक-सी नियति के लोग। अपने ही घर-परिवार से धीरे-धीरे हाशिये पर खिसकते लोग। उन्हें अब लगता है, उन्हें नहीं कहना थी मन्नू से जूते वाली बात... कहकर भी क्या हुआ। चुप रह लेते तो यूँ आज मन भारी नहीं होता। लेकिन नहीं कहते तो न जाने कब तक भीतर फाँस चुभती रहती। खैर, अब उन्हें भी इस बात को नजरअंदाज कर देना चाहिए हमें थोड़ा-थोड़ा नजरअंदाज करना भी सीखना होगा। नजरंदाजी की आदत बनानी होगी।

एक बार फिर उन्होंने उस खाली जगह को देखा, जहाँ कुछ देर पहले तक वह जूता पड़ा था। उस खाली जगह में उन्हें जूते की मुस्कराती छवि दिखाई दी। उस जूते ने इस बार एक कदम आगे बढ़कर घमंड से इतराते हुए जीत की कुटिल मुस्कान उनकी ओर

फेंकी। यह उन्हें इतना उपहासिक लगा कि वे सहन नहीं कर सके, दर्द की ठंडी नश्तर धँस गई थी। वे जानते थे कि यह भ्रम है पर उसमें इतना गहरा तंज था कि वे भीतर तक बिलबिला उठे।

उन्होंने अपनी पूरी जिंदगी में कभी इतनी जलालत नहीं सही थी, लिहाजा यह उनके लिए पहला मौका था। वे अपने बचपन से ही गांधी दर्शन से खासे प्रभावित थे और अपरिग्रह का पालन करते हुए अपने लिए कम से कम संसाधन रखते थे। कम से कम जरूरतें और अच्छे विचार। अधिकारी होते हुए सादा पहनावा और ईमानदारी से उन्होंने घर चलाया। बच्चों को भी शुरू से अनुशासन में रखा और खूब पढ़ाया-लिखाया। दोनों बेटियों की शादियाँ की, वे अपने घर चली गईं। बेटा मन्नू आगे पढ़ाई के लिए यूएसए चला गया। वहीं उसकी जॉब भी लगी। वे उसके वहाँ जॉब करने के खिलाफ थे। उन्हें लगता था कि बेटा पढ़ाई के बाद इंडिया आए और यहीं कहीं नौकरी करे। सेलेरी भले ही कम हो पर यहीं रहे। पहले माँ-बहनें भी खिलाफ रहीं फिर वहाँ मल्टीनेशनल कंपनी में साल की तनख्वाह आठ अंकों में सुनी तो उनकी खिलाफत ठंडी पड़ गई वे आखिर तक अड़े रहे। लेकिन उनकी किसी ने नहीं सुनी। यह उनकी पहली हार थी।

फिर धीरे-धीरे पिता का स्नेह जीतता गया और उनकी हार फीकी पड़ने लगी। करीब-करीब हर रोज ही वीडियो कालिंग से उनकी बेटे-बहू और बच्चों से बातें हो जाया करतीं। साल में दो बार मन्नू बच्चों के साथ घर आता। माँ-पिता को बीमारियों का वास्ता देते हुए अपने साथ ले जाने की जिद करता। बहनों के यहाँ मिलने जाता।

हालाँकि मन्नू के रहन-सहन का तौर-तरीका पूरी तरह से बदल गया था। उसकी हर जरूरत अब ब्रांड में बदलने लगी थी। पहनावे से लेकर क्रीम-पाउडर और चड्ढी-बनियान तक। वह इस तरह इनका आदी हो गया था कि इनके बिना उसको अनकंफर्ट महसूस होने लगता। वे अपनी जिंदगी में जब, जहाँ और जो भी मिला, वापरते रहे पर मन्नू को देखकर वे सिहर उठते। ये लड़का किस तरफ जा रहा है। वे देखते कि मन्नू बेतहाशा और बिना सोचे-समझे अपने और अपने परिवार पर खर्च करने लगा है। उन्हें चिंता होने लगती। बावजूद इसके सब कुछ ठीक-ठीक चल रहा था।

दरवाजे पर हुई आहट ने उन्हें चौंकाया। देखा तो सरूप था। उनके मुँह से अनायास निकला - "सरूप अच्छे वक्त पर आए हो, बड़ा बुरा लग रहा था। मन में न जाने क्या-क्या ख्याल आ रहे थे। चाय पियोगे...?"

सरूप अपनी आदत के मुताबिक पहले खाँसा था और फिर लंबी साँस लेते हुए कहने लगा - "इधर से गुजर रहा था साहब तो आपकी याद आ गई, क्यों मन दुखी करते हो आप भी... अब मन्नू भैया का तो ऐसा ही चलता है। मन्नू भैया बच्चों के साथ आते हैं तो घर में होली और दीवाली साथ-साथ आ जाती है और जब जाते हैं तो..."

"बात वह नहीं है सरूप, उसकी तो अब आदत बन गई है। पता है कि वो दो-चार दिन ही हमारा वक्त हुआ करता है। वक्त ने हमको अपनी तरह से ढाल लिया है।"

वे सरूप को सब कुछ बताना चाहते थे। उससे खुलकर बात करना चाहते थे। अपने मन में चल रही घनमथान पर बातें करते हुए वे हल्के हो जाना चाहते थे। लेकिन भीतर कुछ था, जो उन्हें रोक रहा था। सरूप उनके नजदीक था पर आखिरकार बाहर का ही। घर की अंदरूनी बातें उससे करना ठीक नहीं होगी।

उधर सरूप चिंता में पड गया था। - "साहब, तबीयत नरम-गरम तो नहीं हो रही। ब्लड प्रेशर की दवाई लेना तो नहीं भूल गए, अस्पताल ले चलूँ क्या?"

"अरे, चिंता की कोई बात नहीं रे सरूप, यह तो उमर का ही कसूर है। इस दौर में आदमी जरूरत से ज्यादा सोचने-समझने लगता है। नहीं सोचना चाहिए पर क्या करें, बस में भी कहाँ... यह भी जानते हैं कि इससे कुछ नहीं बदलेगा। सब कुछ अपनी रफ्तार से ही चलेगा। हम उसे बदल नहीं सकते। हम इस रफ्तार से बाहर किए हुए लोग हैं, जहाँ से हम पैवेलियन के दर्शक की तरह उन्हें रफ्तार में दौड़ते हुए देख रहे हैं।" - उनका चेहरा तमतमा गया था।

"हाँ, साब दुनिया ऐसे ही बनती है। नया आता है तो पुराने को जाना ही पड़ता है। देखिए न मैं भी तो रफ्तार का ही शिकार हूँ। उन निर्जीव मशीनों की रफ्तार ने एक ही रात में हम बारह सौ मजदूरों को फैक्ट्री से निकाल बाहर कर दिया। सवाल मशीनों का भी नहीं है, मशीनें पहले भी थी और वक्त के साथ बदलती जाएँगी। सवाल तो हमारी

सोच का है। विदेशों में आबादी कम होने से ज्यादातर काम मशीनों से करना पड़ता है पर हमारे यहाँ आबादी ज्यादा होने पर भी मशीनों का मोह इसीलिए है कि इससे मजदूर कम रखने होते हैं। तनख्वाह कम तो मुनाफा ज्यादा। एक झटके में हम रफ्तार से परे धकेल दिए गए थे। फैक्ट्री को हमने अपने खून-पसीने से सींचा था। भूखे-प्यासे रहकर भी उसकी साख बनाई थी। आज दुनियाभर में इसके जूतों का डंका बजता है तो हमारे ही हुनर पर...।"

उसने खाँसने के बाद लंबी साँस भरी और कहने लगा - "यह हमारा हुनर ही था कि जूते मुँह से बोलते थे। सन सत्तर के आस-पास जब फैक्ट्रियाँ लगाने के लिए सरकार ने इस कस्बे को चुना। तभी टाटा ने पहली बार यहाँ चमड़े का सामान बनाने का कारखाना खोला था। दो रोटी की चाह में हम भी जुट गए थे। गाँव में खबर पहुँची तो पिता उखड़ पड़े थे - "यही बाकी रह गया था। इसीलिए तुम्हें पढ़ाया-लिखाया कि ठाकुर की औलाद होकर जूते गाँठने का काम करो। क्यों मेरे नाम पर बट्टा लगा रहे हो। गाँव आ जाओ, खेत इतना तो देते ही हैं कि कोई भूखा न रहे। पर साब नहीं लौटे तो नहीं लौटे हम भी... डटे रहे और खटते रहे यहीं पर।"

"सरूप, तुम्हारी ये कहानी कई बार सुन चुका हूँ पर क्या करें... हम सब इस समय के आगे बेबस हैं। बेबस और निहत्थे। हमारे पास न इसके उस पार जाने का रास्ता है और न ही कोई तैयारी। इस चकाचौंध में हमारी आँखों की पुतलियाँ रतौंधी का शिकार हैं। हम मुट्ठीभर लोग बख्तरबंद हो भी जाएँ तो क्या कर सकते हैं? हमारी हड्डियाँ थक चुकी हैं और नए लोगों से तो कोई उम्मीद भी नहीं...।"

"अच्छा मैं चाय बनाता हूँ। मन्नू की माँ सत्संग में गई है। उसे लगता है कि बुढ़ापे में यही रास्ता बच रह गया है। पता नहीं उसे लगता है या सत्संग वाले स्वामीजी की बात को ही दोहराती रहती है। कहती है कि सारी जिंदगी अपने लिए जीते रहे, आखरी वक्त तो ऊपर वाले की लौ जगा लो। यही साथ जाएगा। यही सत्य है। मुझे नहीं लगता कि यह सत्य होगा। यही सत्य होता तो स्वामीजी इतना बड़ा मठ क्यों खड़ा करते? सत्संग में वे जिस माया को परे धकेलने की बात करते हैं, खुद उसमें ही क्यों उलझे रहते?"

सरूप बगीचे में काम करने चला गया और वे चाय बनाने किचन में। उन्होंने चाय चढ़ाकर लाइटर से गैस चूल्हा ऑन कर दिया। चाय धीरे-धीरे उबलने लगी। उबाल उनके भीतर भी फूट रहा था।

सरूप से उनका वास्ता करीब दस साल पहले हुआ था, जब चमड़े की टाटा फैक्ट्री से उसे निकाला जा चुका था। वह बहुत सदमे में था। उसके बच्चे अभी आठवीं-दसवीं में ही पढ़ रहे थे। नौकरी छूटने से उसका परिवार अब कैसे चलेगा। यह चिंता उसे खाए जा रही थी। उसने पढ़ाई के बाद फैक्ट्री में काम करते हुए चमड़े के काम का हुनर सीख लिया था। इसके अलावा रोजी-रोटी के लिए उसे कोई काम नहीं आता था। तब उन्होंने ही उसे कुछ पैसे दे जूते बनाकर बेचने के लिए प्रेरित किया था। वह टाटा से कच्चा माल ले आता। उसने भी कुछ पैसे जोड़े थे, उससे जरूरी औजार खरीद लिए फिर जूते बनाने लगा। पहली जोड़ी उन्होंने ही उससे खरीदी थी। उसने बहुत सुंदर, फिट और आरामदेह जूता बनाया था। कुछ और जोड़ियाँ भी बनाई, उन्हें बेचने के लिए खूब हाथ-पैर मारे। बाजार भर में मेहनत की पर कुछ नहीं हुआ। हर किसी को ब्रांड चाहिए था। वे जूता नहीं पहनते थे, ब्रांड पहनते थे। अब जूता पैरों के लिए जरूरी नहीं, स्टेट्स सिंबल बन चुका था।

उन्हें पिता याद आए, जो एक ही जूते को कई सालों तक पहना करते। जूते में छोटी-मोटी टूट-फूट भी हो जाती तो वे मोची से उसे दुरुस्त करवा लिए करते। बारिश के चार महीनों में चमड़े के जूतों को कपड़े में बाँधकर सहेजते, फिर बारिश खुलने पर उनकी सफाई और पालिश करते। उनमें नए फीते डालते तो उन्हें लगता कि नए जूते पहने हैं। नए जूते काटते तो वे उनमें रुई के फाहे चिपका लेते। बारिश के दिनों में वे नायलोन के जूते पहनते और बारिश के बाद उन्हें सहेज कर रखते अगली बारिश के इंतजार में। उनके जूते देखकर हम मौसम का हाल पता कर लेते थे।

चाय उबल गई थी। उन्होंने दो प्यालों में गर्म चाय उंडेली और प्यालों को दोनों हाथों में थामे उन्हें ड्राइंगरूम के सेंटर टेबल पर रख दिया। सरूप को आवाज दी और चाय के प्यालों से उठते धुएँ के छल्लों को वे देर तक देखते रहे। उन्हें लगा हमारे बच्चे भी इन छल्लों की तरह ही हमसे दूर कहीं खो गए हैं। इस चकाचौंध भरे मेले में कहीं गुम चुके हैं।

सरूप और वे दोनों चाय पी रहे थे। ड्राइंगरूम में खामोशी पसरी थी। कभी-कभार सिर्फ चाय की सिप सुनाई देती थी। यह खामोशी उनके पूरे दौर की खामोशी थी। भीतर के भरे-पूरे उबाल के बावजूद बाहर की खामोशी। वे चाय नहीं अपने वक्त की सिप ले रहे थे। घूँट-घूँट... ड्राइंगरूम के बाहर की जिंदगी रोजमर्रा की तरह आबाद थी। बाजार सुबह की अँगड़ाई लेने के बाद खुलने लगे थे। दुकानों के सिर पर ताज की तरह सजे वस्तुओं के ब्रांड के साइनबोर्ड धूप में छुरे की मानिंद चमकते हुए जगमग हो रहे थे। टीवी पर संसद में विदेशी निवेश को बढ़ाने का प्रस्ताव पास हो रहा था। ठीक उसी वक्त इस ड्राइंगरूम में दो बूढ़े अपनी चित-परिचित उदासी में डूबे खामोश चाय पी रहे थे। छले जा चुके बूढ़े।

चाय पीते हुए वे सोच रहे थे उसी जूते के बारे में। मन्नू के जूते के बारे में। उन्होंने फिर एक बार उस जगह पर डरते हुए दृष्टि डाली, जहाँ कल तक वह जूता रखा था। उन्हें हैरत हुई कि अब वहाँ जूता नहीं था। सरूप के आने के पहले तक वही जूता उन्हें चिढ़ाने का भ्रम दे रहा था पर अब वह यहाँ नहीं है? क्या सरूप की आँखों का लिहाज कर रहा है।

जब पिछली बार मन्नू आया था तब वे उसे टाटा कंपनी के आउटलेट पर ले गए थे। एक हजार से लगाकर तीन हजार तक के अच्छे से अच्छे जूते वहाँ थे। नई से नई डिजाइन और उम्दा दर्जे के जूते लेकिन मन्नू को नहीं जँचे थे। मन्नू बाहर निकल आया था और कार के पास खड़े होकर किसी से मोबाइल पर बतिया रहा था।

उन्होंने काउंटर पर बैठी लड़की से मुस्कराते हुए कहा था... "आजकल के बच्चों की पसंद भी बड़ी टिपिकल होती है। उन्हें चीजों से ज्यादा उसके ब्रांड की जरूरत हुआ करती है।"

काउंटर पर बैठी लड़की भी मुस्कराई थी। फिर उसने अपनी सूनी आँखों में चमक भरते हुए कहा - "कोई बात नहीं सर... टाटा का ब्रांड भी पूरे देश में पहचाना जाता है और हमें यह बताते हुए प्राउड फील हो रहा है कि ये जूते यहाँ से एक्सपोर्ट भी होते हैं। दुनिया के नामी ब्रांड के जूते यहीं से जाते हैं।"

"मैं कुछ समझा नहीं... दुनिया के नामी ब्रांड के जूते यहीं से... कैसे?"

उसने काउंटर के पीछे अपनी कुर्सी से खड़े होते हुए कहा - "सर, बात यह है कि दुनिया के कई नामी ब्रांड ऐसे होते हैं, जो खुद कोई चीज नहीं बनाते। वे सिर्फ अच्छी चीजें खरीदते हैं और उन्हें अपने टेग लगाकर ऊँचे दाम पर बेचते हैं। यही जूता यूएसए में जाकर फुगाटी का नामी जूता हो जाता है।"

"फुगाटी का जूता तो काफी महँगा होता है...?" उन्होंने आश्चर्य से आँखें फैलाकर पूछा था।

"हाँ सर, वहाँ करीब तीस-बत्तीस हजार का पड़ता है।"

"ओह्ह, एक टेग लगा देने से सीधे दस गुना कीमत बढ़ जाती हैं"

"हाँ सर और लोग वहाँ खुशी-खुशी साढ़े चार सौ डालर में इसे खरीदते हैं।"

बाद में इसकी तस्दीक उन्होंने सरूप से भी की थी। इस बात को कई महीने बीत गए इस बीच मन्नू दो बार इंडिया आया भी। बात आई-गई हो गई

सरूप अपना प्याला खालीकर फिर से बगीचे में काम करने लौट गया था। वे सिलसिलेवार तीन दिन पुराने वाकिए को याद कर रहे थे।

इस बार जब मन्नू यहाँ आया तो चमचमाता चमड़े का जूता उसके पैरों में था। उसने घर में घुसने से पहले ठीक इसी जगह उतारा था अपना वह जूता। उन्होंने फिर उस खाली जगह को देखा, बिच्छु के डंक की तरह वह जगह उन्हें झनझना रही थी। जब मन्नू आया था तो जूते को पहन कर लेकिन जब लौटा तो जूते ने उसे पहन लिया था।

उन्होंने जूते के बारे में मन्नू से पूछा तो उसने बताया कि यूएसए के प्रसिद्ध शोरूम से इसे साढ़े चार सौ डालर में खरीदा है। यह दुनिया की सबसे बड़ी ब्रांड फुगाटी का जूता है। इसकी चमक देखिए, पहनने पर इतना हल्का और कंफर्ट लगता है जैसे आपने जूता पहना ही नहीं।

फुगाटी का नाम सुनते ही उनका पारा चढ़ गया था।

"तुम्हें कुछ पता भी है। फुगाटी कोई जूता नहीं बनाती, वह सिर्फ अपना टेग लगाती है। यह जूता तो यहीं की फैक्ट्री में बना हुआ है। इसकी कीमत यहाँ महज ढाई-तीन हजार की है। यानी महज चालीस डालर का" - उनकी आवाज तल्ख होती जा रही थी।

"अरे, इसमें इतना हायपर होने की क्या बात है। वहाँ साढ़े चार सौ डालर मेरी दो दिन की कमाई है। कुछ कम-ज्यादा दे भी दिया तो कौन-सी मुसीबत टूट पड़ी।" - मन्नू ने बेपरवाही से जवाब दिया।

मन्नू की माँ ने उन्हें रोक दिया, वे कहना चाहते थे कि यह थोड़े पैसे ज्यादा दे देने भर की बात नहीं है। यह जूता मारा है फुगाटी ने तुम्हारे चेहरे पर। तुम्हारे पूरे समाज पर।

उनकी साँसें उखड़ने लगी थी।